ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 2, March 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

राजपूत-मुग़ल संबंध : भारतीय परिपेक्ष्य में एक ऐतिहासिक अध्ययन

AMIT KUMAR, Dr. YASH KUMAR

Scholar, Govind Guru Tribal University, Banswara (Raj.), India

Assistant Professor in History Department, New Look Girls P.G. College, Lodha, Banswara (Raj.), India

शोध सार

मुगल साम्राज्य के विस्तार और समेकन में राजपूत एक अभिन्न अंग थे। मुगल शासकों ने प्रमुख रूप से अकबर ने यह महसूस किया कि साम्राज्य को मजबूत करने के लिए मुगल कुलीन वर्ग में स्थानीय मध्यस्थों और क्षेत्रीय शक्तियों को शामिल करने की आवश्यकता थी। बाबर और राणा सांगा के बीच प्रारंभिक संघर्ष के बाद मुगल राजपूत संबंधों में एक नए चरण की शुरुआत होती है, जो बाद के मुगल शासकों के काल तक जारी रहा, हालांकि टकराव के कुछ मामले भी देखने को मिले। यद्यपि इस इकाई में हम इन रियासतों की आंतरिक राजनीति में मुगल-राजपूत गठबंधनों द्वारा निभाई गई महत्त्वपूर्ण भूमिका को संबोधित नहीं कर रहे हैं, लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इस गठबंधन ने इन रियासतों की आतंरिक राजनीति को बहुत हद तक बदल दिया। अंत में, यह उजागर करना महत्वपूर्ण है कि उत्तराधिकार के युद्ध के दौरान हारने वाले का साथ देने के बावजूद, राजपूत शासकों को आमतौर पर उत्तराधिकारी शासक द्वारा समायोजित कर लिया जाता था।

मूल शब्द - साम्राज्य, संघर्ष, रियासत, उत्तराधिकार, सैन्य, राजनीति।

प्रस्तावना

15वीं शताब्दी तक कई राजपूत प्रमुखों ने अपने कबायली राजतंत्रों की स्थापना और सुदृढीकरण कर लिया था। उनमें से एक राणा सांगा हैं, जिन्होंने दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी और ग्वालियर के मान सिंह तोमर और मेवाती प्रमुख हसन खान जैसे कई अन्य लोगों के साथ मिलकर मुगल सम्राट बाबर के विजय अभियान को रोकने का प्रयास किया, लेकिन 1527 में वे खानुआ के युद्ध में बाबर की बेहतर युद्ध तकनीक का सामना नहीं कर सके। नतीजन बाबर मुगल साम्राज्य की नींव रखने में सफल हो सका। हालांकि अपने चार साल के छोटे से शासन काल में बाबर राजपूत सरदारों के साथ एक स्पष्ट रचनात्मक और स्थायी संबंध विकसित नहीं कर सका। उसके बेटे और उत्तराधिकारी हुमायूँ को अपने भाइयों और अफगानों के साथ संघर्ष करना पड़ा, जो उसके अधिकार को चुनौती दे रहे थे। यह उनका विरोध करने में विफल रहा। शेरशाह सूरी ने उसे ईरान भागने के लिए विवश किया जहाँ उसे शरण मिली। 1555 में उसने वापस आकर मुगल सिंहासन पर पुनः कब्जा कर लिया। परन्तु 1556 में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार इतने कम समय में मुगलों और राजपूत प्रमखों के बीच कोई सीधा संघर्ष या सहयोग नहीं हो सका।

राजपूत और अकबर

मुगल साम्राज्य के क्रमिक विस्तार के साथ-साथ विजित प्रदेशों पर नियंत्रण मजबूत करना आवश्यक हो गया था। अकबर ने मुगल साम्राज्य के लिए एक ठोस आधार सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न प्रकार के राजनीतिक प्रशासनिक उपायों की शुरुआत की। हुमायूँ के अनुभवों को देखते हुए, अकबर साम्राज्य की स्थिरता के लिए क्षेत्रीय शक्तियों पर पकड़ स्थापित करने के लिए उत्सुक था, जो स्थानीय राजकुमारों और मध्यस्थों, विशेष रूप से राजपुताना के शासकों के प्रति मुगलों के पुनर्परिभाषित संबंधों में परिलक्षित होता है।

मुगल-राजपूत संबंधः चरित्र को पुनः परिभाषित करना

क्षेत्रीय जमीन से जुड़ें अभिजात वर्ग और केन्द्रीय शक्ति के संबंधों में बहुत उतार चढ़ाव देखे गए। जब तक केंद्र शक्तिशाली रहा, अधीनस्थ क्षेत्रीय शक्तियाँ उनके नियंत्रण में रहीं, लेकिन केन्द्र के दुर्बल होने की स्थिति में क्षेत्रीय शक्तियों ने स्वतंत्रता का संकेत प्रदर्शित किया। इस प्रकार सैन्य शक्ति पर आधारित ऐसे संबंध अस्थायी प्रकृति के थे और किसी किस्म का स्थायी संबंध स्थापित नहीं कर सके। केंद्र और राजपूत राजतंत्रों के संबंधों की अस्थिर प्रकृति अकबर के शासन संभालने तक जारी रहीं। अकबर स्थानीय शासकों के साथ रचनात्मक और स्थायी संबंधों के लिए आतुर था। जब अकबर के पिता हुमायूँ भगोड़े और संकट की स्थिति में थे,

तब अकबर अमरकोट में सिंध के थार रेगिस्तान में एक सोढ़ा राजपूत प्रमुख के यहां पैदा हुआ। उसका पालन-पोषण हिंदुस्तानी संस्कृति में हुआ। इस प्रकार उसने संकीर्ण धार्मिक और नस्लीय दृष्टिकोण के बजाय स्वतंत्र व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक विश्व दृष्टिकोण विकसित किया। उसकी विश्वदृष्टि भारतीय, फारसी और मध्य एशियाई सांस्कृतिक दृष्टिकोण का मिश्रण थी। उसने बचपन से ही अपने भगोड़े माता-पिता के उतार-चढ़ाव को देखा था। इस प्रकार स्वयं के अनुभव और ऐतिहासिक यादों ने अकबर को व्यावहारिक, दूरदर्शी और सकारात्मक दृष्टि विकसित करने में मदद की। यह उसके भविष्य के राजनीति और सामाजिक-धार्मिक कार्यों से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उसने सुशासन के प्रबंधन के लिए एक कुशल समूह का गठन किया। इस समूह ने उसकी दूरदर्शी नीति पर अमल करने में उसकी मदद की। अकबर ने ऐसी नीति विकसित की जिसका पालन उसके राजनीतिक वंशजों ने किया और वास्तव में लंबे समय तक टिकाऊ और सफल साबित हुई।

उसने विभिन्न नस्लीय और धार्मिक पहचान के मिलेजुले कुलीन वर्ग का गठन किया। उन्हें एक साथ कैसे रखा जाए और कैसे केन्द्रीय कमान के तहत एकीकृत किया जाए, यह अकबर के लिए एक बड़ी चुनौती थी। इसके लिए उसकी तर्कसंगत विश्वदृष्टि तथा पुराने अनुभव 'सामंती वर्गों के मध्य समानता' के सिद्धांत के रूप में विकसित हुआ। अपने व्यक्तिगत विश्वास से ऊपर उठने और दूसरों की मान्यताओं का सम्मान करने के लिए, उसने मुख्यतः राजपूत प्रमुखों को आकर्षित किया। दूसरों शब्दों में, उसने अपने रैयत और रियासत को उनके धर्मों और सांस्कृतिक लोकाचार का पालन करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी। अकबर के कुलीन वर्ग और विशेष रूप से राजपूतों के साथ उसके राजनीतिक संबंधों को 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन तक सामाजिक धार्मिक और आर्थिक विकास के प्रकाश में देखा जाना चाहिए।

प्रारंभिक चरण

अकबर ने स्थानीय प्रमुखों और केन्द्रीय सत्ता के बीच राजनीतिक संबंधों में तेज बदलाव की शुरूआत की। अकबर के समय तक एक स्थानीय पराजित प्रमुख द्वारा एक विजयी शक्ति के आधिपत्य को स्वीकार करने के बाद निर्धारित पेशकश की एक राशि देने पड़ती थी और उस पराजित प्रमुख को अपनी सरदारी अपनी पसंद के अनुसार चलाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था। दूसरे शब्दों में, उसे तब तक स्वायत्तता प्रदान की जाती थी जब तक कि वह पेशकश का भुगतान करना जारी रखता था। इस संबंध को मजबूत बनाने के लिए अकबर ने इस प्रावधान के अलावा उनसे सत्ता और धन साझा करने का प्रस्ताव रखा। इसके लिए उन्हें मुगल सेवा में शामिल होना पड़ा और मुगल साम्राज्य के विस्तार में भाग लेना पड़ा। अकबर की यह नीति सुविचारित थी। समकालीन इतिहासकार आरिफ कंधारी बताते हैं कि दो से तीन सौ राजा थे जिनके पास बहुत मजबूत किले थे। चूँकि प्रत्येक किले को जीतने में एक या आधा साल तो लग ही जाता था, इसलिए हिंदुस्तान के एक सम्राट के लिए राजाओं के सभी किलों को बल से जीतना संभव नहीं था। अकबर ने उनसे सुलह करना बेहतर समझा। यह भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कंधारी का कहना है कि राजपूत 'सम्राट के प्रति ईमानदार और वफादार' होने के लिए दृढ़ थे। उस वक्त मुगलों के सामने दो चुनौतीपूर्ण मजबूत सैन्य शक्तियों थी अफगान और राजपूत।

मुगल अफगानों से डरते थे, क्योंकि वे उनके संभावित राजनैतिक प्रतिद्वंद्वी थे और उन्होंने अकबर के पिता हुमायूँ को ईरान को पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया था। इस प्रकार अकबर के समक्ष राजपूत शासकों से बेहतर संबंध स्थापित करना ही एकमात्र विकल्प था। शेख फरीद भाकरी ने अपनी पुस्तक 'जखिरात उल खवानीन' में दर्ज किया है कि ईरान के शाह ने सम्राट हुमायूँ को सलाह दी थी कि हुमायूँ अफगानों के बजाय राजपूतों पर भरोसा करे। शाह ने हुमायूँ को राजपूतों के साथ वैवाहिक तथा सामाजिक संबंध स्थापित करके अपनी शक्ति को मजबूत करने की भी सलाह दी। अकबर यह भी जानता था कि मानव संसाधन के बिना उसके साम्राज्य का विस्तार नहीं किया जा सकता है और इसे एकीकृत और टिकाऊ रखने के लिए स्थानीय प्रमुखों के साथ स्थायी हितों का निर्माण करना आवश्यक था। मानव संसाधन या सैन्य शक्ति स्थानीय प्रमुखों द्वारा और विशेष रूप से राजपूत प्रमुखों द्वारा प्रदान की जा सकती थी, जैसा कि आइन-ए-अकबरी के पैदल सेना, घुड़सवार सेना व सेना के जानवरों के सर्वेक्षण से स्पष्ट है जिसे स्थानीय प्रमुखों (राजपूत प्रमुखों सहित) द्वारा रखा जाता था। केवल नौ कुलों के राजपूत प्रमुखों के पास उनकी कमान के तहत 2,62,000 घुड़सवार तथा 12,25,000 पैदल सैनिक थे। सैन्य मानव संसाधनों के लिए केंद्रीय शक्ति की चिंता समकालीन लेखक द्वारा राजा भारमल कछवाहा की अधीनता पर व्यक्त एक बयान से भी स्पष्ट होती है। राजा की अधीनता को बड़े जमींदार की अधीनता के रूप में नहीं देखा गया था, बल्कि उसे एक बड़े उलुस (जनजाति) के प्रमुख के रूप में देखा गया। इस तथ्य की पुष्टि अकबर द्वारा मुगल सेना में शामिल किये गए कछवाहा कुलीनों की संख्या से होती है। 1605 ईसवी में वे विभिन्न कुलों के 31 राजपुतों की कुल संख्या में से 11 थे। अन्य अवरोही संख्या में राठौर-7, भदुरिया, बघेल, तंवर-2, प्रत्येक से चंद्रावत, भाटी, हाडा, धंधेरा, पुंडीर, बुंदिला, सिसोदिया-1 प्रत्येक से था।

हालांकि, इन वशों में से अधिकांश वंश प्रमुख बिना किसी बड़ी लड़ाई के अकबर या मुगल केन्द्र सरकार की सेवा में शामिल हो गए। यह एक विचारणीय प्रश्न है, बिना किसी महत्वपूर्ण संघर्ष के ये प्रमुख अकबर की सेवा में क्यों शामिल हुए? और इसकी व्याख्या की आवश्यकता है। आरिफ कंधारी बताते है कि अकबर ने अनुनय और सुलह का ऐसा राजनैतिक माहौल बनाया, जिसने स्थानीय प्रमुखों में विशेष रूप से राजपूत प्रमुखों में विश्वास पैदा किया। यहाँ विश्वास पैदा करने का अर्थ है, अकबर ने शुरू से ही 'योग्यता

और निष्ठा' के आधार पर सभी प्रमुखों को समान अवसर प्रदान किया। जैसे ही भारमल अकबर की सेवा में शामिल हुआ, उसे 5000 सैनिकों का सेनापति (मनसबदार) बनाया गया। मुगल पदानुक्रम में यह अकबरशाही कुलीन वर्ग में सर्वोच्च पद था। भारमल की व्यक्तिगत स्थिति और वेतन आय के अलावा, उसके ताबीनन (अनुयायियों) की एक बड़ी संख्या के लिए रोजगार के सृजन को ध्यान में रखना भी महत्वपूर्ण था। स्पष्ट रूप से अधिकांश सैनिक उसके क्षेत्र के राजपूत थे। आगे 1572-73 में जब अकबर गुजरात अभियान के लिए गया, तब उसकी अनुपस्थिति में आगरा (जो कि उस वक्त मुगल साम्राज्य की राजधानी थी) को पूरी तरह से भारमल की देखरेख में छोड़ दिया गया। उसे वजीर-ए-मुतलक (असीमित शक्ति का मंत्री) बनाया गया था। अकबर को अपने साम्राज्य के मामलों का प्रबंधन करने के लिए कुशल, समर्पित और मेधावी वफादार अधिकारियों की आवश्यकता थी। इसलिए शुरू से ही उसने उन्हें महत्वपूर्ण कार्यालय सौंपने की नीति पर अमल किया। इसके अलावा, 1580 में जब अकबर ने अपने साम्राज्य को 12 सूबों (प्रांतों) में विभाजित किया, तो चार महत्वपूर्ण सूबों की सूबेदारी (शासन) राजपूत प्रमुखों को सौंपी गई। वे सूबे थेः

मुखिया का नाम	सूबा का नाम
1) राजा जगन्नाथ	अजमेर
2) राजा असकरण	आगरा
3) राजा भगवान दास	लाहौर
4) कुंवर मान सिंह	काबुल

इसके बाद 1586 में, लाहौर सूबे को बीकानेर के राजा राय सिंह राठौर के अधीन कर दिया गया। शस्त्रागर और संचार जैसे अन्य महत्वपूर्ण विभाग 1583 में राजा जगन्नाथ और राजा लूणकरण को सौंपे गए थे। राजा असकरण को मृतक की संपत्ति का प्रभारी बनाया गया था। जगमल को क्रय-विक्रय विभाग का प्रभार मिला।

तीन रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण और मजबूत किलो को राजपूत प्रमुखों के अधीन रखा गया था। वे थे :

1) ग्वालियर का किला राजा जगन्नाथ को,
2) राजा मान सिंह को रणथंभौर का किला, और
3) रोहतास का किला राज सिंह को और बाद में राजा मान सिंह को।

अकबर द्वारा शुरू की गई इस नीति का उसके उत्तराधिकारियों ने पालन करना जारी रखा और मुगल साम्राज्य के पतन तक यह नीति चलती रही। सम्राट जहांगीर ने अपने पिता की नीति का पालन करना जारी रखा और राजपूत कुलीनों को उनकी योग्यता और वफादारी के अनुसार संरक्षण दिया।

मेवाड़ और अकबर

मुगल-राजपूत संबंधों की शुरुआत पानीपत के युद्ध से होती है। बाबर के साथ राजनीतिक संबंध स्थापित करने के लिए राणा सांगा ने अपने बेटे बाग को दूत के रूप में काबुल भेजा था। जाहिर तौर पर यह कदम सुल्तान इब्राहिम लोदी के खिलाफ था। आगरा और दिल्ली के कब्जे के बाद, बाबर अन्य शक्तिशाली प्रमुखों को अपने अधीन करने के लिए चला गया। मालवा और गुजरात के सुल्तानों के अलावा राणा सांगा उनमें से एक था। दोनों के बीच संघर्ष का तत्कालिक कारण बयाना का प्रमुख निजाम-उल-मुल्क था, जो दोनों में से किसी का भी आधिपत्य स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक था। मुगल सेना ने बयाना पर हमला किया और इस पर कब्जा कर लिया। राणा सांगा, जिसने बयाना के पास अजमेर पर अपना वर्चस्व स्थापित लिया था, उसने मुगल सेना को चुनौती दी और बयाना में उसे हरा दिया दिया, लेकिन जल्द ही बाबर राणा और उसके सहयोगी हसन खान मेवाती को हराने में सफल रहा। 1527 में खानुआ की लड़ाई में वे दोनों और कई अन्य मारे गए थे। पानीपत और खानुआ की लड़ाई में बाबर की सफलता का प्रमुख कारण बेहतर युद्ध तकनीक थी। बाबर के पास तोपखाना था जिसने इन सफलताओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बाबर (मृत्यु 1530) के पुत्र और उत्तराधिकारी हुमायूँ अपने भाइयों और गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह और शेर शाह सूरी की चुनौतियों में व्यस्त रहा। उसे ज्ञात था कि उसने दिवंगत राणा रतन सिंह की पत्नी रानी कर्मावती से अपने आंतरिक शत्रुओं और बाहरी आक्रमणकारियों; गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह और सुल्तान बाज बहादुर के खिलाफ अपने राखी भाई (हुमायूँ) से मदद पाने की आशा के साथ राखी स्वीकार की थी। लेकिन हुमायूँ, जो पहले से ही अपनी चुनौतियों के दबाव में था, रानी की पुकार का जवाब नहीं दे सका।

1568 में अकबर की सेना रणथंभौर और चित्तौड़ के किलों को जीतने में सफल रही। बूंदी, डूंगरपुर और बासवाडा के प्रमुखों ने भी मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। लेकिन फिर भी अकबर के सामने मेवाड़ क्षेत्र के प्रमुख राणा प्रताप को हराने की बड़ी चुनौती थी। 1572-73 में गुजरात और 1574 में बंगाल के कब्जे के बाद अकबर ने राणा प्रताप की ओर रूख किया। राणा उदय सिंह (1572) की मृत्यु के बाद उसका पुत्र, प्रताप उसका उत्तराधिकारी बना। प्रताप के बड़े भाई सकट सिंह और जगमल अकबर की सेवा में शामिल हो गए थे।

राणा प्रताप मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक थे। इसलिए अकबर ने कठोर रवैया अपनाया और 1576 में कुंवर मान सिंह और कई अन्य शक्तिशाली कुलीनों की कमान के तहत एक बड़े और शक्तिशाली सैन्य दल को भेजा, अंततः हल्दी घाटी में मुगलों और राणा प्रताप की सेना के बीच लड़ाई हुई। युद्ध का विवरण समकालीन फारसी और बाद में समकालीन राजस्थानी स्रोतों में वर्णित है। युद्ध के बाद, राणा पहाड़ी क्षेत्र कोलियारी गोगुन्दा में चला गया। इस क्षेत्र में मुगल प्रशासन स्थापित हो गया था,

लेकिन मुगलों और राणा के अनुयायियों के बीच संघर्ष जारी रहा। 1597 में राणा प्रताप की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद, उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राणा अमर सिंह ने मुगल सेना का सामना किया। मुगलों और राणा की सेना के बीच युद्ध 1615 तक जारी रहा, हालांकि मेवाड़ के क्षेत्र को मुगल नियंत्रण में लाया गया था, लेकिन राणा ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार नहीं किया था। मुगलों की सैन्य शक्ति और मेवाड़ के राणाओं के बीच कोई तुलना नहीं थी, लेकिन राणाओं को मेवाड़ साम्राज्य की प्राकृतिक भौगोलिक स्थिति से अवश्य लाभ प्राप्त हुआ। अरावली पर्वतमाला और घाटियों ने राणाओं की सेना को आक्रामक और रक्षात्मक दोनों शक्ति प्रदान की। मुगल सेना को अरावली पर्वतमाला जैसे पहाड़ी इलाकों में लड़ने के लिए अभ्यस्त और प्रशिक्षित नहीं किया गया था, जबकि ये पर्वतमाला और घाटी राणा की सेना के अभिन्न अंग थे।

राजपूत और जहाँगीर

कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि कुछ धार्मिक कट्टरपंथियों के प्रभाव में जहांगीर ने अपने पिता की नीति को त्याग दिया और तुरानी और ईरानी कुलीनों के पक्ष में राजपूत प्रमुखों के साथ भेदभाव करना शुरू कर दिया, लेकिन हाल के गहन शोधों ने इस सिद्धांत को अस्वीकृत कर दिया है।

निरंतरता और कुछ मामूली परिवर्तन

जहाँगीर ने पहले अपने पिता अकबर के खिलाफ विद्रोह किया था। उसे अपने प्रतिद्वंद्वी राजकुमार खुसरों (जहाँगीर का पुत्र) के खिलाफ तुरानी और ईरानी कुलीनों का समर्थन प्राप्त था। जब जहाँगीर सफल हुआ और अकबर की मृत्यु के बाद मुगल सिंहासन पर बैठा, तब उसने राजपूतों सहित उन सभी कुलीनों का पक्ष लेना शुरू कर दिया जो उसके साथ थे और उनके प्रति ठंडा रवैया अपनाया जो उसके खिलाफ थे, हालांकि अपने राज्यरोहण के बाद, जहांगीर ने माफी की घोषणा की थी, लेकिन उसकी नापसंदगी उसके कार्यों और अभिव्यक्ति मैं दिखाई पड़ी। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा में उन्हें तिरस्कारपूर्वक साम्राज्य के पुराने भेड़िये कहकर संबोधित किया है। राजा मान सिंह और मिर्जा अजीज कोका, जो सबसे शक्तिशाली राजपूत और तुरानी रईस थे, राजकुमार खुसरो को अगला मुगल सम्राट बनाने के पक्ष में थे। उनके हित समान थे। राजकुमार खुसरो मान सिंह का भांजा और मिर्जा अजीज कोका का दामाद था।

जहाँगीर की सेवा में राजा मान सिंह का पद स्थिर रहा। उसे उसके सैन्य पद में कोई और पदोन्नति नहीं दी गई और 1606 में बंगाल के सूबेदार पद से हटाए जाने के बाद उसे कोई पद भी नहीं सौंपा गया। लेकिन दूसरी ओर, मुगल साम्राज्य के भावी सम्राट राजकुमार सलीम या जहाँगीर का पक्ष लेने वाले अन्य राजपूत प्रमुखों को उनके पदों में पदोन्नति देकर उनका पक्ष लिया गया। राम दास कछवाहा और रायसल दरबारी शेखावत को क्रमशः 2000 जात से 5000 और 1000 जात से 5000 पद पर पदोन्नत किया गया था। इसी तरह मऊ-नूरपुर के राजा बसु को भी 700 से 3500 जात के पद पर पदोन्नत किया गया था। बुंदेला प्रमुख बीर सिंह, जिन्होंने जहाँगीर के कहने पर प्रसिद्ध दरबारी इतिहासकार और अकबरनामा के लेखक अबुल फजल की हत्या कर दी थी, को मुगल पदानुक्रम में 5000/2000 की उच्च पद के साथ शाही सेवा में सम्मिलित किया गया था। जहाँगीर के राज्यभिषेक के बाद, जब उसके बड़े भाई रामचन्द्र बुंदेल ने विद्रोह कर दिया, तब उसे उसकी वतन जागीर ओरछा से वंचित कर दिया गया और बीर सिंह देव को सौप दिया गया। तदोपरान्त अपने शासनकाल की अवधि में जहाँगीर ने नए कुलों और क्षेत्रों के राजपूत प्रमुखों की भी भर्ती की। वे अनूप शहर के अनूप सिंह बड़गुजर, जम्मू के राजा संग्राम और गुलेर के देबी चंद थे जिनके पद क्रमश इस प्रकार से थे- 2000/1600, 1500/1000 और 1500/500, इन नए भर्ती किए गए कुलीनों में सबसे प्रिय बड़गुजर प्रमुख अनूप सिंह था जिसने जहाँगीर को एक उग्र बाघ से बचाया था। मनसब के अलावा, उसे कोल (अलीगढ़) की सरकार में वतन के रूप में परगना अनूप शहर दिया गया था। उसे अनी राय सिंह दलन की उपाधि भी दी गई थी। जहाँगीर की माँ ने उसे अपना पुत्र माना और वह बिना किसी बाधा के शाही महल में प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र था। वह इतना भरोसेमंद हो गया था कि जहाँगीर ने उसे ग्वालियर किले का किलादार बना दिया और विद्रोही राजकुमार खुसरो की गिरफ्तारी के बाद उस किले में उसकी हिरासत में डाल दिया। इसके बाद, शेख अहमद सरहिंदी एक इस्लामी न्यायशास्त्री, जिसे साम्राज्य में नस्लीय और धार्मिक भावनाओं को भड़काने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था, और किले में अनी राय सिंह दलन की हिरासत में रखा गया था।

मेवाड़ और जहाँगीर

हालाँकि, 1606 में अपने राज्याभिषेक के बाद से ही जहाँगीर ने राजकुमार परवेज को मेवाड़ में नियुक्त किया और उसे सलाह दी, यदि राणा स्वयं और उसका सबसे बड़ा पुत्र, जो करण कहलाता है, तुम्हारी प्रतीक्षा करने और सेवा और आज्ञाकारिता का लाभ उठाने के लिए आए, तो तुम्हें उसके क्षेत्र को कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए। इससे पता चलता है कि जहाँगीर युद्ध के पक्ष में नहीं था बल्कि शांतिपूर्ण समाधान चाहता था। मेवाड़ से परवेज को वापस बुलाने के बाद, अब्दुल्ला खान (1609) और राजा बासु (1612) जैसे शक्तिशाली कुलीनों को बड़ी सैन्य टुकड़ी के साथ मेवाड़ भेजा गया, लेकिन वे राणा और उसकी सेना को परास्त करने में सफल नहीं रहे। तत्पश्चात, 1613 में जहाँगीर ने एक सेना का गठन किया और राजकुमार खुर्रम की कमान में रखा और उसे अजमेर से मेवाड़ के अभियान के लिए विदा किया। लंबे समय तक युद्ध और कठिनाइयों के बाद राणा अमर सिंह को कुछ शर्तों के

साथ मुगल आधिपत्य स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया गया। वे कुछ शर्तें ऐसी थी- राणा व्यक्तिगत रूप से मुगल सेना के प्रधान सेनापति राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) से मिलने आए, राणा के पुत्र राजकुमार करण सम्राट जहाँगीर के दरबार में जाए; राणा मुगल सेवा में भर्ती हो और प्रतिनिधि रूप से 1000 घुड़सवार सेना के साथ सेवा करे। महत्वपूर्ण शर्तों में से एक यह थी कि राणा को चितौड़ के किले को वापस कर दिया जाए लेकिन इसे मजबूत और मरम्मत करने की अनुमति नहीं दी गई। राणा अमर सिंह और राजकुमार खुर्रम के बीच मुलाकात सौहार्दपूर्ण रही। समझौते को सम्राट जहाँगीर ने मंजूरी दे दी और एक फरमान (राजा का आदेश) भेजा जिसमें इस समझौते की पुष्टि करते हुए राणा को 5000 के पद से सम्मानित किया गया। इसके बाद राजकुमार करण मुगल दरबार में गया जहाँ उसका भव्य स्वागत किया गया। मुगल शिष्टाचार के अनुसार, करण को मुगल शासक परिवार द्वारा सम्मानित किया गया था। तुजुक-ए-जहाँगीरी में निहित कुछ आख्यान इस बात को स्पष्ट करते हैं। जब करण दरबार पहुँचा तो जहाँगीर ने राणा अमर सिंह और करण की दो मूर्मियाँ तराशने का आदेश दिया। जहाँगीर के शब्दों में, "मैंने राणा और उसके पुत्र करण की पूर्ण आकार की आकृतियों को संगमरमर से तराशने के लिए त्वरित-हाथ वाले पत्थर काटने वालों को आदेश दिया था। इस दिन वे पूर्ण हुए और मुझे सौंपे गए। मैंने उन्हें आगरा ले जाने और झरोका (प्रदर्शनी-खिड़की) के नीचे बगीचे में रखने का आदेश दिया।' यहाँ, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मूर्तियों या जीवित छवियों को इस्लामी विश्वास के प्रतिकूल माना जाता है, लेकिन इस बात की परवाह किए बिना राणा और राजकुमार करण को इस सम्मान से सम्मानित किया गया।

जहाँगीर करण को शिकार पर भी ले गया। वह कहता है, "मैं करण को अपने साथ ले गया, और उससे कहा कि मैं बाघ वहीं मारूँगा जहाँ वह चाहता है कि मैं ऐसा करूँ। इस व्यवस्था के बाद मैं उस जगह गया जहाँ उन्होंने बाघ को चिन्हित किया था। संयोग से हवा में अशांति थी और मादा हाथी जिस पर मुझे सवार किया गया था, वह बाघिन से डर गई थी और वह स्थिर खड़ी रहने में समर्थ नहीं हो पा रही थी। शिकार में इन दो बड़ी बाधाओं के बावजूद, मैंने सीधे उसकी आँख की ओर गोली मारी। सर्वशक्तिमान ईश्वर ने मुझे उस राजकुमार के सामने शर्मिंदा नहीं होने दिया, और मैंने उसकी आँख में गोली मार दी। उसी दिन करण ने मुझे एक विशेष बंदूक के लिए अर्जी दी, और मैंने उसे एक विशेष तुर्की बंदूक दी।" करण को दरबार में कई कीमती वस्तुओं से सम्मानित भी किया गया। कई घोड़े, हिरण, अरबी कुत्ते, कश्मीरी कपड़े का एक काबा (कोट) उसे भेंट किया गया। उसे मुगल हरम में ले जाना एक दुर्लभ उपकार था, जहाँ नूरजहाँ बेगम ने उसे सम्मान की एक मुगल पोशाक (खिल्लत), एक तलवार, एक घोड़ा और काठी और एक हाथी प्रदान किया। मुगल शासक परिवार से यह शानदार स्वागत प्राप्त करने के बाद, करण पूरी धूमधाम के साथ अपने वतन वापस चला गया। 1620 में राणा अमर सिंह की मृत्यु के बाद, जहाँगीर ने राजा किशन दास को उसके पिता राणा अमर सिंह की मृत्यु पर शोक व्यक्त करने के लिए उदयपुर भेजा। करण को मेवाड़ का अगला राणा बनने पर भी बधाई दी गई। जहाँगीर ने उसे उसके पुश्तनी पद पर स्वीकार किया और उसे राणा की पुश्तैनी उपाधि, सम्मान का वस्त्र, एक घोड़ा और एक हाथी प्रदान किया।

राजपूत और शाहजहाँ

परवर्ती मुगल-राजपूत संबंधों को समझने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि (1) अपने पिता जहाँगीर की तरह, खुर्रम या शाहजहाँ ने भी विद्रोह किया था, (2) कुलीन वर्ग बादशाह जहाँगीर और विद्रोही राजकुमार शाहजहाँ के बीच विभाजित हो गया था, ऐसा ही राजपूत कुलीनों का मामला था. (3) शाहजहाँ ने अपने राज्याभिषेक के बाद उन राजपूत कुलीनों और अन्य लोगों को पुरस्कृत किया जिन्होंने उसका साथ दिया था।

मुगल कुलीन वर्ग में राजपूतों की बढ़ती हिस्सेदारी

1622 में जब राजकुमार, खुर्रम ने विद्रोह किया, तो पिछले अनुभव वाले कुलीनों ने विद्रोही राजकुमार के साथ जाने में सतर्क रहे। इस प्रकार कुछ कुलीन ऐसे भी थे जिन्होंने राजकुमार के प्रति ढुलमुल रवैया दिखाया, लेकिन ऐसे कुलीन भी थे जो राजकुमार की सेवा में शामिल हो गए। विद्रोह की अवधि के दौरान, भीम सिसोदिया जैसे राजपूत प्रमुखों ने राजकुमार का समर्थन करने का जोखिम उठाया और बिलोचपुर की लड़ाई में खुद को प्रतिष्ठित किया। फलस्वरूप, उसे 5000/5000 के मनसब और महाराजा की उपाधि से पुरस्कृत किया गया। टॉस की लड़ाई से पहले जिसमें भीम मारा गया था, उसने शाहजहाँ की सेवा में 6000/5000 का दर्जा हासिल कर लिया था। 1624 में जब शाहजहाँ बिहार में था, उज्जैन के प्रमुख नारायण मल और उनके भाई प्रताप 5000/5000 और 3000/2000 के मनसब के साथ शाहजहाँ की सेवा में शामिल हुए। नारायण मल के अन्य भाइयों के मनसब की राशि 2000/1000 थी। राजकुमार का समर्थन करने वाले कुलीनों को मुगल साम्राज्य की कमान संभालने के पश्चात् शाहजहाँ ने पुरस्कृत किया। उदाहरण के लिए, राजकुमार के पक्ष में अपनी जान गंवाने वाले गोपाल और बलराम गौर के वंशज शाहजहाँ के प्रिय बन गए। गोपाल दास के पुत्र बेथल दास को 3000 / 1500 के मनसब के साथ शाही सेवा में शामिल कर लिया गया। उसे राजा की उपाधि भी दी गई थी और साथ ही में एक झंडा, एक घोड़ा, हाथी और 30,000 रूपए भी दिए गए। उसकी मेघावी सेवाओं के लिए उसे पदोन्नति और अन्य उपकार मिलते रहे। उसकी मृत्यु से पहले 1651 में उसे मुगल पदानुक्रम में 5000/5000 के उच्चतम मनसब के साथ 2000 दो अस्पा सिह अस्पा से सम्मानित किया गया था। कई महत्वपूर्ण पद जैसे रणथम्भौर किले की किलादारी, उसके बाद आगरा का किला उसे सौंपा गया। उसे अजमेर और आगरा जैसे महत्वपूर्ण सूबों का सूबेदार भी नियुक्त किया गया था। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह बात थी कि उसे स्थायी आवासीय जागीर दिया गया था और वतन जागीर में उसे धंधेरा दिया गया

था। शिव राम के पुत्र बलराम को 1500/1000 के मनसब के साथ शाही सेवा में नियुक्त किया गया था। शाही सेवा में उनकी संख्या बढ़ती रही। शाहजहाँ के शासनकाल के अंत तक मुगल सेवा में उनकी संख्या बढ़कर 12 हो गई। इसी तरह अमरकोट के सोढा प्रमुख, जिसने भगोड़े हुमायूँ और उसकी गर्भवती पत्नी हमीदा बानो बेगम को आश्रय दिया था और जहाँ अकबर का जन्म हुआ था, शाहजहाँ के काल तक मुगल सेवा में कोई स्थान नहीं पाने के लिए चिन्हित किये जा सकते हैं। राणा जोधा, जिसने विद्रोही राजकुमार खुर्रम को अपने क्षेत्र से गुजरने में मदद प्रदान की थी, को 800/300 के मनसब से पुरस्कृत किया गया। शाहजहाँ के शासनकाल में सेवा में शामिल होने वाले अन्य राजपूत प्रमुख दूर-दराज के क्षेत्रों से थे। इन राजपूत सरदारों ने पिछले सेवारत राजपूत प्रमुखों की बढ़ती बेहतर सामाजिक आर्थिक स्थिति को देखते हुए और शक्तिशाली केंद्रीय शक्ति को देखते हुए मुगल नौकरशाही का हिस्सा बनने में कोई संकोच नहीं किया। इनमें किश्तवाड़ के राजा कुंवर सेन (मनसब 1000/300), चंबा के सूरज राजा पृथ्वी चंद (मनसब 1000/400), कुमाऊ के सोमबंसी तिलक चंद (मनसब 800/400), सॉगर चतरमुज (मनसब 500/500), नाहर सोलंकी (मनसब 500/400), जादोन राजा जगमन और मुकुंद (मनसब 500/300 प्रत्येक), झाला रावत दयाल दास (मनसब 500/250) और राजा किशन सिंह तंवर (मनसब 800/400) थे।

मुगल सेवा में विभिन्न कुलों के पारंपरिक राजपूत प्रमुख मुगल नौकरशाही में उच्च पदों का आनंद लेते रहे। वे कछवाहा और राठौर थे। शाहजहाँ के काल में मनसबों और पदों पर उनकी संख्या और शक्ति में वृद्धि हुई। 1621 में, कछवाहा और राठौर प्रत्येक 07 और 07 थे और 13,200/6450 और 15700/7450 के मनसब उनके पास थे, जबकि 1657 में शाहजहाँ के शासन के अंत में उनकी संख्या बढ़कर 14 और 23 हो गई थी तथा मनसब 18,700/18500 और 28.950/24,230 हो गए थे। पुराने और अनुभवी कुलीन इस बात से अवगत थे कि सम्राट जहाँगीर उन लोगों को नापसंद करता था जिन्होने उसके खिलाफ विद्रोही खुसरो का साथ दिया था। इस कारण मिर्जा राजा जय सिंह सतर्क था और जहाँगीर का साथ देता रहा, परन्तु बाद में शाहजहाँ की निकटस्थ सफलता को देखते हुए उसके पास चला गया। शाहजहाँ ने सम्राट बनने पर उसे 4000 दो अस्पा सिंह अस्पा के साथ 5000/5000 के उच्चतम पद से पुरस्कृत किया।

शाहजहाँ की माँ जोधपुर शासक परिवार की राठौर राजकुमारी थी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शाहजहाँ के मन में राठौरों के लिए नरमी थी। यह एक कारण है कि उनकी संख्या और मनसब, दोनों ही आमेर जयपुर के पारंपरिक राजपूत कछवाहा वंश से आगे निकल गए थे। हाडा प्रमुख रतन सिंह, जिसने सरलबुलंद राय की उपाधि प्राप्त की थी, जहाँगीर के शासनकाल की शुरुआत से ही उसके द्वारा की गई वफादार सेवाओं के लिए जहाँगीर का पसंदीदा था। वह शाहजहाँ के विद्रोह के समय जहाँगीर के पक्ष में मजबूती से खड़ा रहा। बुरहानपुर में शाहजहाँ की सेना के साथ झड़प में सरबुलंद राय, जो वहाँ हाकिम के रूप में तैनात था, ने स्वयं को प्रतिष्ठित किया। उसके पुत्र, गोपीनाथ ने जिसने युद्ध के मैदान से भागने का विकल्प चुना था, उसके पिता द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। अंत में जब शाही सेना दक्कन में विद्रोहियों को हराने में सफल रही, तो उसकी वफादार सेवाओं के लिए पुरस्कर के रूप में, सरबुलंद राय को राम राय की उपाधि के साथ 2500/1500 से 5000/5000 तक पदोन्नत किया गया था जिसे दक्कन में सर्वोच्च सम्मान माना जाता था। इसके अलावा, इस अवधि के दौरान, सरबुलंद राय के पुत्र माधो सिंह और उसके भाई हृदय नारायण के पास 1000/600 और 1200/600 के मनसब थे। हालाँकि, शाहजहाँ अपने राज्याभिषेक के पश्चात् हाड़ाओं को नज़रअंदाज नहीं कर सकता था, लेकिन वह उन्हें नापसंद करता था। प्रारंभ में शाहजहाँ ने रतन सिंह और उसके पुत्र माधो सिंह को उनके मनसब 5000/5000 और 1000/600 पर पुष्टि की। 1631 में रतन सिंह की मृत्यु के बाद, उसका क्षेत्र बुंदी दो भागों में विभाजित कर दिया गया था। उसके पुत्र माधो सिंह को 2500/1500 के मनसब के साथ कोटा और फलैता के परगना सौंपे गए और उसके पोते सतरसाल को बूंदी और कांकड़ के परगने 3000/2000 के मनसब के साथ राव की उपाधि प्रदान भी की गयी थी। यह माधो सिंह था जिसने विद्रोही खान-ए-जहाँ लोदी का पीछा किया और उसे मार डाला और बाद में विशेष रूप से विद्रोहियों, खान-ए-जहाँ लोदी और जुझार सिंह के खिलाफ मेधावी सेवाएं प्रदान करने के लिए, उसे 3000/2000 के मनसब से सम्मानित किया गया। शाहजहाँ के साथ दक्खन जाने वाले सतरसाल ने शाहजी भाँसले के खिलाफ अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और उसे 3000/3000 के मनसब पर पदोन्नत किया गया था। शाहजहाँ के शासनकाल के अंत में, बल्ख, बदख्शाह, काबुल और दक्कन में सेवाएँ प्रदान करने के बाद, 4000/4000 में पदोन्नत किया गया था। माधो सिंह की मृत्यु (1648) के बाद, उसके बेटे मुकुंद सिंह और मोहन सिंह को शाही सेना में ले लिया गया और उन्होंने 3000/2000 और 800/400 की पदोन्नति अर्जित की।
इसके अतिरिक्त, विभिन्न कुलों के राजपूत कुलीनों ने मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। उन्हें कई किलों की सूबेदारी, फौजदारी, थानेदारी और किलादारी जैसे महत्वपूर्ण पद सौंपे गए थे। राजा बिठल दास को अजमेर के एक अहम सूबे में नियुक्त किया गया था और उसके बेटे अनिरूद्ध को उसका प्रतिनिधि बनाया गया। दिल्ली, चाकला, हिसार, बंगश, कोह-कांगड़ा काबुल और दौलताबाद की फौजदारी उन्हें सौंपी गयी थी। इसी तरह उन पर इतना भरोसा किया गया कि कई किलो को उनकी देखरेख में कर दिया गया। आगरा, रणथंभौर, दौलताबाद, असीर, कुलत (कंधार), काबुल और मांडू जैसे किलों की किलादारी उन्हें दे दी गई थी।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

मेवाड़ और शाहजहाँ

1615 से 1654 तक राणाओं और मुगलों के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण बने रहे, लेकिन जब 1652 के अंत में, राणा करण के उत्तराधिकारी राणा जगत सिंह ने 1615 की संधि का उल्लंघन करते हुए चितौड़ के किले की मरम्मत शुरू कर दी, तो सम्राट शाहजहाँ ने इसे गंभीरता से लिया। मेवाड़ क्षेत्र के कठिन पहाड़ी इलाको में अपने पिछले अभियानों का अनुभव होने की वजह से शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर के नक्शे कदम पर चलते हुए एक सेना को संगठित करने और स्वयं ही अभियान की निगरानी करने का फैसला किया और अजमेर पहुँचा। उसने वजीर सदुल्लाह खान को 30,000 की सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त किया। उसके साथ कई उच्च कोटि के कुलीन भी थे। चित्तौड़ पहुँचने के बाद, मुगल सेना ने राणा द्वारा किए गए मरम्मत कार्यों को ध्वस्त करना शुरू कर दिया। पिछली लड़ाइयों के विनाशकारी परिणामों को ध्यान में रखते हुए दोनों पक्षों ने शांतिपूर्ण समाधान का फैसला किया। राणा राज सिंह ने अपने दूतो के माध्यम से क्षमा याचना की और केंद्र सरकार को 1615 की संधि के नियमों और शर्तों का पालन करना जारी रखने का आश्वासन दिया। अधीनता के प्रतीक के रूप में, राणा ने राजकुमार को मुगल दरबार में भेज दिया। इसके बाद, केंद्र और मेवाड़ के राणाओं के बीच संबंध काफी हद तक मुगल साम्राज्य के बेहतर दिनों तक 1615 के समझौते के अनुसार ही चले।

राजपूत और उत्तराधिकार का युद्ध

शाहजहाँ के शासनकाल के अंत में, उसके चार बेटे दारा शुकोह, शुजा, औरंगजेब और मुराद अगला मुगल सम्राट बनने की इच्छा रखते थे, और उन्होंने अपने पिता के खिलाफ किसी न किसी वजह से विद्रोह कर दिया। इस समय दारा अपने पिता के साथ राजधानी दिल्ली में था, शुजा बंगाल में था, औरंगजेब दक्कन में था और सबसे छोटा मुराद गुजरात में था। फिर से राजपूत कुलीनों सहित मुगल कुलीनों को यह तय करना था कि उन्हें किसका साथ देना चाहिए। फिर से अपने स्वार्थ और मुनाफे के अनुसार, उन्होंने विभिन्न राजकुमारों का पक्ष लिया। अजमेर के पास देवराई की निर्णायक लड़ाई से पहले दारा के नेतृत्व वाली शाही सेना और औरंगजेब और मुराद की सेनाओं के बीच धरमत और सामुगढ़ में दो प्रमुख युद्ध हुए। जहाँगीर और शाहजहाँ के विद्रोहों के पहले के मामलों की तरह, इस मामले ने भी राजपूतों सहित कुलीनों को विरोधी ताकतों के बीच विभाजित किया था।

राजपूत कुलीनों ने किसी भी अन्य नस्लीय समूह की तरह राजकुमारों को उनकी पसंद और मुनाफे के अनुसार समर्थन किया। क्योंकि राजकुमार दारा को सम्राट शाहजहाँ का खुले तौर पर पूर्ण शाही समर्थन प्राप्त था, इस कारण बड़ी संख्या में दारा को राजपूत कुलीनों का समर्थन प्राप्त था। राजा जसवंत सिंह और मिर्जा राजा जय सिंह जैसे सबसे वरिष्ठ और शक्तिशाली राजपूत कुलीनों ने दारा शुकोह के नेतृत्व वाली शाही सेना का पक्ष लिया। शाहजहाँ की गंभीर बीमारी और उसकी मृत्यु की अफवाह ने शुजा को बंगाल से आगरा के लिए प्रस्थान करने के लिए प्रेरित किया। यह सूचना मिलने पर शाहजहाँ ने सुलेमान शुकोह के नेतृत्व में मिर्जा राजा जय सिंह और अनिरूद्ध सिंह गौड़ के साथ एक सेना भेजी। इस मौके पर मिर्जा राजा को 6000/6000 के साथ 5000 दो अस्पा सिह अस्पा और अनिरूद्ध को 3500/3000 तथा दो अस्पा सिंह अस्पा के साथ पदोन्नत किया गया। राजा जसवंत सिंह को 7000/7000 के पद पर पदोन्नत किया गया। कई राजपूत कुलीनों के साथ राजा जसवंत सिंह के अधीन एक शक्तिशाली सेना औरंगजेब और मुराद की शक्तिशाली जोड़ी को रोकने के लिए प्रतिनियुक्त की गयी थी जो आगरा की ओर जा रहे थे। दूसरी ओर, अन्य राजपूत कुलीन जो दक्कन में औरंगजेब के साथ और गुजरात में मुराद के साथ तैनात थे। उन्होंने धरमत की लड़ाई में शाही सेनापति राजा जसवंत सिंह के खिलाफ लड़ाई लड़ी। राजा जसवंत सिंह औरंगजेब और मुराद की सेना से हार गया था। मुराद ने दारा का साथ देने के बजाय औरंगजेब के साथ रहना पसंद किया। जसवंत सिंह के साथ लड़ने वाले कई राजपूत कुलीन युद्ध में मारे गए। निराश जसवंत सिंह अपने वतन जोधपुर के लिए रवाना हो गया। कई अन्य राजपूत कुलीनों ने भी ऐसा ही किया और अपने गृह क्षेत्रों के लिए रवाना हो गए।

अगला युद्ध औरंगजेब और मुराद के विरूद्ध दारा शुकोह की कमान में सामुगढ़ में लड़ा गया। दारा को औरंगजेब और मुराद ने हराया। वह दिल्ली और फिर पंजाब भाग गया। दोनों ओर से कई राजपूत कुलीन मारे गये और घायल हुए। औरंगजेब और मुराद की तरफ से गरीब दास सिसोदिया मारा गया और शुभकरण बुंदेला गंभीर रूप से घायल हो गया। औरंगजेब की ओर से लड़ाई लड़ने वाले बुंदेला प्रमुख देवी सिंह को भीलसा के फौजदार के रूप में नियुक्त करके पुरस्कृत किया गया था।
राणा राज सिंह सिसोदिया, जो दोनों दावेदार पक्षों से दूरी बनाए हुए था, ने औरंगजेब को इस जीत पर बधाई दी। कई राजपूत कुलीनों के पास कोई विकल्प नहीं था, और वे औरंगजेब के पक्ष में चले गए। मिर्जा राजा जय सिंह और नागौर के राव राय सिंह राठौर सुलेमान शुकोह को छोड़कर मथुरा में औरंगजेब के साथ हो गए थे। औरंगजेब ने मिर्जा को एक करोड़ दाम की जागीर से पुरस्कृत किया।
अंतिम और निर्णायक लड़ाई अजमेर के पास अरावली पर्वतमाला के एक हिस्से देवराई में लड़ी गई थी। इसका व्यूहात्मक महत्व था। सिंध से भागकर दारा और उसकी सेना ने देवराई में मोर्चा संभाल लिया। राजा जसवंत सिंह और राणा राज सिंह द्वारा दारा को संभावित समर्थन को लेकर औरंगजेब काफी चितिंत था। यह औरंगजेब द्वारा राणा राज सिंह को लिखे गए प्रसिद्ध निशानों से स्पष्ट होता है। उसने राणा को आश्वासन दिया कि वह अपने पूर्ववर्तियों की तरह धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पालन करेगा। उसने राणा

को वे सारे क्षेत्रों को वापस कर देने का भी प्रस्ताव रखा जो 1654 में राणा से चितौड़ के किले के पुनर्निर्माण के लिए दंड के रूप में ले लिए गए थे, हालांकि, राणा और जसवंत सिंह ने इस लड़ाई में भाग नहीं लिया। औरंगजेब की ओर से, मऊ-नूरपुर के राजा राजरूप सिंह कोहिस्तानी और उसके सैनिक, जो पहाड़ी क्षेत्र में लड़ने में कुशल थे, पीछे की ओर से पहाड़ी पर चढ़ गए और दारा की सेना पर हमला कर दिया। आखिरकार, यह अगले मुगल सम्राट औरंगजेब के पक्ष में एक निर्णायक लड़ाई साबित हुई।

औरंगजेब और राजपूत

अकबर के समय से राजपूत प्रमुख मुगल राज्य व्यवस्था में धीरे-धीरे बहुत महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरे थे और कोई भी मुगल सम्राट उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। इस कथन की गवाही एक फ्रांसीसी यात्री, चिकित्सक और एक मुगल कुलीन के कर्मचारी फ्रेंकोइस बर्नियर द्वारा प्रमाणित है। उसने कहा, "महान मुगल, हालांकि एक मुसलमान और अन्य जातियों (हिंदुओं) के दुश्मन, हमेशा अपनी सेवा में राजाओं का एक बड़ा दल रखता है, उन्हें अपने अन्य उमराओं के समान ही मानता है, और उन्हें महत्वपूर्ण आदेशों के लिए अपनी सेना में नियुक्त करता है।" इस प्रकार औरंगजेब के काल में भी उनकी संख्या, मनसब और नौकरशाही के पदों में काफी वृद्धि हुई। राजा जसवंत सिंह को 7000/7000 के पद के साथ 5000 दो अस्पा सिह अस्पा दिया गया और दो बार उसे गुजरात (1659-61 और 1670-72) का सूबेदार नियुक्त किया गया था। उमदत-उल मुल्क के खिताब के साथ मिर्जा राजा जय सिंह ने 7000/7000 और राणा राज सिंह ने 6000/6000 के पद को हासिल किया। अन्य वंशानुगत और पारंपरिक राजपूत शाही सेवा में बने रहे और साम्राज्य के धन (जागीर), शक्ति (मनसब), और नौकरशाही पदों (कार्यालयों) को साझा किया।
औरंगजेब के दक्कन में लंबे समय तक रहने, अभियानों पर भारी खर्च, मुगल सेवा में दक्खनी और मराठा कुलीनों की बढ़ती संख्या और साम्राज्य की थम गयी आय ने कई जटिल समस्याएं पैदा की। जजिया का पुनः अधिरोपण, हिंदु व्यापारियों पर कर, भू राजस्व की वसूली का कठोर तरीका और किसानों से उपजी समाज में बैचेनी पैदा हुई। गरीब किसानों के पास सरकार के खिलाफ विद्रोह के अलावा कोई विकल्प नहीं था। इन प्रतिक्रियावादी अभिव्यक्तियों को मुगल साम्राज्य के पतन की शुरुआत के रूप में देखा जाता है। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और मुगल शासन और साम्राज्य को चरमराती स्थिति में छोड़ गया।

हस्तक्षेप का विरोधः राठौर विद्रोह

मुगल सम्राट औरंगजेब और जोधपुर के राठौड़ों के बीच प्रमुख संघर्षों में से एक जोधपुर की गद्दी के उत्तराधिकार का मुद्दा था। 1678 में जसवंत सिंह की पेशावर में मृत्यु हो गई, जहाँ वे तैनात किए गए थे। उसकी मृत्यु के समय राजा पर शाही खजाने की भारी कर्ज था। सरकार द्वारा कर्ज के ऐसे मामलों में, तूरानी, ईरानी, राजपूत या अन्य जाति के मृत कुलीनों की संपत्ति को राजकीय नियंत्रण में ले लिया जाता था और वह साम्राज्य के शाही खजाने में शामिल कर दिया जाता था। इस प्रकार मुगल शासन नीति के अनुरूप, मृतक राजा जसवंत सिंह की पूरी संपत्ति को मुगल अधिकारियों ने अपने कब्जे में ले लिया। इसके अलावा, औरंगजेब ने दो परगनाओं को छोड़कर पूरे मारवाड़ राज्य को खालीसा में मिलाने का आदेश दिया। औरंगजेब का यह निर्णय सरदारों को पसंद नहीं आया और इससे पूरे मारवाड़ में बवाल मच गया। दूसरी ओर, मृत्यु के समय राजा ने कोई पुरूष वारिस नहीं छोड़ा था लेकिन उनकी दो विधवाएँ गर्भवती थी। इसी बीच खबर आई कि मृतक राजा की दोनों पत्नियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। वे थे अजीत सिंह और दलथंभान। नवजात शिशुओं की वास्तविकता के सत्यापन के लिए शाही दरबार में लाया गया। शीघ्र ही दलथंभान की मृत्यु हो गई थी लेकिन अजीत सिंह दिवंगत राजा के उत्तराधिकारी हो सकते थे। यह भी स्पष्ट किया गया था कि उत्तराधिकारी के लिए न तो कोई महिला और न ही कोई नौकर चुना जा सकता था। इस मामले की बेहतर समझ के लिए, राजपूत राज्यों में उत्तराधिकारी के लिए पिछली परंपराओं और प्रथाओं पर एक नजर डालना महत्वपूर्ण है।

राजपूत प्रमुखों द्वारा अकबर की सेवा में शामिल होने के बाद से, उत्तराधिकार निर्धारण का अधिकार केंद्रीय शक्ति के पास था। बांधवगढ़ रीवा के बघेला राजपूत के मामले में जब राजा बीर बहादुर की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, तो बांधवगढ़ के लोगों ने बांधवगढ़ के राजा बीर बहादुर के दूर के रिश्तेदार बिक्रमजीत को राजा बनाना चाहा लेकिन अकबर ने इसे अस्वीकार कर दिया। अकबर की अस्वीकृति का विरोध किया गया और बांधवग में बड़े पैमाने पर अशांति का कारण बना। आठ महीने से अधिक लंबे अभियान के बाद, शाही सेना ने इस क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया और राजा राम चंद के पोते दुर्जोधन को बांधवगढ़ का राजा घोषित किया गया।

इसके अलावा इस तरह के अधिकार का प्रयोग सम्राट जहाँगीर ने आमेर के राजा मान सिंह की मृत्यु के बाद किया था। स्वर्गीय मान सिंह के सबसे बड़े पुत्र जगत सिंह की राजा के जीवन काल में मृत्यु हो गई थी। इसलिए, उत्तराधिकार जगत सिंह के पुत्र महासिंह के पास जाना चाहिए था, परंतु जहाँगीर ने महासिंह के बजाय, मृतक मान सिंह के दूसरे बेटे भाओ सिंह को आमेर की गद्दी प्रदान की। इस प्रकार, प्रत्यक्ष वंशावली को जगत सिंह के परिवार से उसके दूसरे बेटे भाओ सिंह से बदल दिया गया था। 1621 में जब भाओ सिंह की मृत्यु हो गई और उसने कोई पुत्र नहीं छोड़ा अपने उत्तराधिकारी के तौर पर, तो जहाँगीर ने महासिंह के पुत्र जय सिंह को उत्तराधिकारी बना दिया। इस प्रकार, फिर से आमेर के नियंत्रण का अधिकार मृतक राजा मान सिंह की सीधे वंशावली में चला गया। इसके अलावा बीकानेर के मामले में, जब 1612 में राव राय सिंह की मृत्यु हो गई थी, तो जहाँगीर ने राव के द्वारा चुने गए उसके

उत्तराधिकारी बेटे सूरज सिंह को उत्तराधिकार देने के बजाय दूसरे बेटे दिलीप सिंह को उत्तराधिकार दे दिया। अन्य राजपूत शासक परिवारों के विपरीत, जोधपुर के शासक राठौर परिवार में उत्तराधिकार के लिए थोड़ी अलग परंपरा थी। सबसे बड़े बेटे के बजाय, राजा की सबसे प्यारी रानी के बेटे को मृतक राजा के अगले उत्तराधिकारी के रूप में पसंद किया जाता था। राजा उदय सिंह, जो मोटा राजा के नाम से जाना जाता था, की मृत्यु 1596 में हो गई और उसके मरने के उपरान्त उस परंपरा का पालन करते हुए, मृत राजा की इच्छा के अनुसार, सम्राट अकबर ने राजा सूर सिंह को उत्तराधिकार प्रदान किया।

हालांकि उदय सिंह का बड़ा बेटा था, लेकिन चूंकि सूर सिंह की माँ सबसे प्यारी रानी थी, इसलिए उदय सिंह ने सूर सिंह को अपना उत्तराधिकारी चुना। इसी तरह, राजा गज सिंह ने बादशाह शाहजहाँ से कहा था कि उसकी मृत्यु के बाद उसके सबसे बड़े बेटे अमर सिंह के बजाय, सबसे छोटे बेटे जसवंत सिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाया जाए। इस प्रकार 1637 में गज सिंह की मृत्यु के बाद, शाहजहाँ ने ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंह के स्थान पर जसवंत सिंह को उत्तराधिकार दे दिया।
अमर सिंह के लिए नई वतन जागीर बनाई गई। वह पहले से ही मुगल सेवा में था और उसे राव की उपाधि के साथ 3000 जात और 3000 सवार से सम्मानित किया गया था। नव निर्मित वतन जागीर नागौर उसे प्रदान किया गया। इस प्रकार अमर सिंह अपने प्रमुखों के साथ नागौर चला गया। नतीजन, जोधपुर के राठौर सरदार दो गुटो में विभाजित हो गए जैसा कि नीचे दर्शाया गया है:
(i) जसवंत सिंधी या जोधपुरी सरदार
(ii) अमर सिंधी या नागोरी सरदार
उपरोक्त उदाहरणों से निम्नलिखित बातें सामने आती हैं.
(i) उत्तराधिकार का अधिकार केंद्रीय शक्ति के पास था न कि किसी राजपूत राज्य के सरदारों के पास।
(ii) वंश-क्रम नहीं बदली जाएगी और यह मृतक मुखिया के शासक परिवार में बनी रहेगी।
(iii) मृतक राजपूत प्रमुख के पुरूष उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में मृतक के निकटतम रक्त संबंधी को उत्तराधिकार दिया जा सकता था।

उपरोक्त राजपूत परंपराओं और मिसालों को ध्यान में रखते हुए, औरंगजेब ने मृतक राजा के निकटतम परिवार के सदस्य को उत्तराधिकार देने का फैसला किया। परिवार के निकटतम सदस्य जसवंत सिंह के बड़े भाई अमर सिंह का पोता इंदर सिंह था। इंदर सिंह ने उत्तराधिकार शुल्क के रूप में छत्तीस लाख रूपए का भुगतान किया। यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अन्य निकटतम राठौर शासक परिवार बीकानेर का था। बीकानेर के राव कर्ण के पुत्र अनूप सिंह ने पैंतालीस लाख रूपए की उत्तराधिकार शुल्क की उच्च राशि की पेशकश की लेकिन औरंगजेब ने उसके प्रस्ताव और उम्मीदवारी को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह स्वर्गीय जसवंत सिंह का दूर का रिश्तेदार था। अतः औरंगजेब ने इंदर सिंह को टीका प्रदान किया। इस आदेश के खिलाफ जोधपुर में तीखी प्रतिक्रिया हुई, जैसा कि सरकार और जसवंत सिंह की विधवा रानी हाड़ी, जो जोधपुरी सरदारों का प्रतिनिधित्व कर रही थी, के बीच हुए पत्र-व्यवहार से स्पष्ट होता है। इन पत्राचारों से स्पष्ट होता है कि रानी हाड़ी और जोधपुरी सरदार किसी भी कीमत पर जोधपुर के अगले प्रमुख इंदर सिंह को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। पहले वे जोधपुर को खालिसा में शामिल करने का विरोध कर रहे थे, लेकिब अब उन्होंने यह तर्क दिया कि वे जोधपुर को इंदर सिंह को सौंपने के बजाय खालिसा में शामिल करना पसंद करेंगे। अगर अजीत सिंह को टीका दिया जाए, तो उन्होंने इंदर सिंह से भी ज्यादा उत्तराधिकार शुल्क देने की पेशकश की। दूसरी ओर, इंदर सिंह ने शाही सेना के समर्थन से जोधपुर की गद्दी पर अधिकार करना शुरू कर दिया। लेकिन वह जोधपुर में बेहद अलोकप्रिय था। इस बात की जानकारी जोधपुर में तैनात मुगल अधिकारी औरंगजेब को दे रहे थे। इसी बीच दुर्गादास और उसके साथी अजीत सिंह को मुगल दरबार से बाहर निकालने में कामयाब हो गए। इस घटना ने इस मामले को और अधिक जटिल बना दिया, जब औरंगजेब ने असली अजीत सिंह को सत्यापित करने से इनकार कर दिया, लेकिन नकली अजीत सिंह को असली के रूप में स्वीकार कर लिया। हालांकि इंदर सिंह और उसके अधिकारियों को जोधपुर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। किन्तु प्रारंभ में, औरंगजेब अजीत सिंह के उत्तराधिकार के खिलाफ नहीं था, पर उसे एक शिशु राजकुमार को उत्तराधिकारी बनाना उचित नहीं लग रहा था। उसने जोधपुरी सरदारों, सोनंग, रघुनाथ दास भाटी, रणछोर, दुर्गा दास, आदि को यह कहकर भी आश्वस्त किया था कि जब अजीत सिंह बड़े होंगे तो उन्हें मनसब और राज दिया जाएगा। जोधपुर में तैनात कुछ मुगल अधिकारियों को जोधपुर सरदारों से सहानुभूति थी। बहादुर खान कोकलताश, जो अन्य लोगों के साथ रानी हाड़ी द्वारा आयोजित अजीत सिंह के जन्मदिन समारोह में शामिल हुआ था, उसने औरंगजेब को अजीत सिंह को उत्तराधिकार देने का सुझाव दिया। ताहिर खान, जो अजीत सिंह से सहानुभूति रखता था, को अपना मनसब खोने की भारी कीमत चुकानी पड़ी। आखिरकार, जब इंदर सिंह सफलता पाने में असफल रहा, तब उसके हाथ से जोधपुर का सिंहासन चला गया और जोधपुर मुगल केंद्र सरकार के सीधे नियंत्रण में आ गया। जोधपुर सरदारों और मुगल सरकार के बीच संघर्ष जारी रहा। 1697 में जब अजीत सिंह 18 वर्ष की आयु का हुआ, तो औरंगजेब ने उसे 1500/500 का मनसब और जागीर में जालौर सौंप दिया। लेकिन अजीत सिंह और जोधपुरी सरदार जोधपुर को वतन जागीर बहाल किए बिना संतुष्ट नहीं थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद भी जोधपुर के राठौड़ों ने अपना संघर्ष जारी रखा। संघर्ष के इस पहलू का अध्ययन हम औरंगजेब के बाद के काल में करेंगे।

हालांकि मौटे तौर पर कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। वे हैं: (i) औरंगजेब राजपूत शासक परिवारों में उत्तराधिकार की पिछली प्रथाओं से विचलित नहीं हुआ। (ii) मूल रूप से यह जोधपुर के राठौर शासक परिवार और नागौर के

राठौर शासक परिवार के बीच सत्ता और प्रतिष्ठा का पारिवारिक झगड़ा था। (iii) अमर सिंधी सरदारों के जोधपुर वापस आने का अर्थ था जोधपुर राज्य में जोधपुरी सरदारों के विशेषाधिकार को धूमिल करना। जाहिर है यह जोधपुरी सरदारों को किसी भी कीमत पर मंजूर नहीं था।

औरंगजेब-काल के पश्चात

औरंगजेब के मरने के बाद, उसके बेटों में भी मुगल गद्दी के लिए लड़ाई छिड़ गई। उत्तराधिकार के लिए पहले के संघर्षों और अब के बीच एक बड़ा अंतर था। पहले के मामलों में, केंद्र काफी मजबूत था, लेकिन अब ऊपर बताए गए कारणों से यह कमजोर हो गया था। हालांकि यह समय किसी भी राजकुमार का समर्थन करने का निर्णय लेने के लिए कुलीनों के लिये चुनौतीपूर्ण समय होता था। एक जीवित सम्राट की अनुपस्थिति में और पहले के मामलों के विपरीत, शक्तिशाली कुलीनों ने अपना गुट बनाकर अपनी अपनी पसंद के राजकुमार का समर्थन किया। राजपूत कुलीनों के पास समर्थन करने के लिए उनकी पसंद का कोई राजकुमार नहीं था, लेकिन उन्हें मुगल दरबार में से ही किसी एक प्रतिद्वंद्वी राजकुमार के पक्ष में होना पड़ता था। हालांकि, इन समूहों के नेता चाहते थे कि सवाई जय सिंह, राजा अजीत सिंह, बुद्ध सिंह हाड़ा, राम सिंह हाड़ा और छत्रसाल बुंदेला जैसे राजपूत कुलीन उनका साथ दें। इस प्रकार उन्होंने परोक्ष रूप से इन गुटों के माध्यम से नए उत्तराधिकारी मुगल सम्राटों का समर्थन या विरोध किया। राजपूत सरदारों और बाद के मुगल बादशाहों के बीच संबंध समय-समय पर बनते-बिगड़ते रहे। जोधपुर, अजीत सिंह का वतन जो उसके पिता राजा जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद खालिसा क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया गया था, केंद्र सरकार के नियंत्रण में जारी रहा। राजकुमार आजम ने जयसिंह और अजीत सिंह का समर्थन हासिल करने के लिए उन्हें अपने पारंपरिक पारिवारिक खिताब मिर्जा राजा और महाराजा के साथ 7000/7000 के पद से सम्मानित किया। उन्हें और अधिक संतुष्ट करने के लिए, अजीत सिंह और जय सिंह को दो महत्वपूर्ण सूबों, गुजरात और मालवा का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। हालांकि जय सिंह आजम के साथ मालवा में शामिल हो गया था, लेकिन जाजू की लड़ाई में, उसने उसे छोड़ दिया। दूसरी ओर, जय सिंह के छोटे भाई विजय सिंह ने राजकुमार बहादुर शाह के साथ जाजू की लड़ाई में उसके पक्ष में लड़ाई लड़ी थी। जय सिंह को विस्थापित कर आमेर को वतन जागीर के तौर पर विजय सिंह को देकर पुरस्कृत किया गया। इस प्रकार दोनों राजा अजीत सिंह और जय सिंह असंतुष्ट रहे। जाजू की लड़ाई में, अजीत सिंह तटस्थ रहा और स्थिति का लाभ उठाते हुए थोड़े समय के लिए जोधपुर पर पुनः कब्जा कर लिया। बहादुर शाह ने उसके खिलाफ कार्यवाई की और अधीनता स्वीकार करने पर उसे महाराजा की उपाधि के साथ 3500/3000 का मनसब दिया परन्तु फिर से जोधपुर को केंद्र के नियंत्रण में ले लिया गया। यह अजीत सिंह को रास नहीं आया। असंतुष्ट अजीत सिंह ने मुगलों को चुनौती दी और युद्ध को फिर से चालू कर दिया। टकराव का एक और मुद्दा शासन का था। 1707 से 1732 की अवधि के बीच, बाद के चार मुगल बादशाहों बहादुर शाह, जहांदार शाह, फारूख सियार और मुहम्मद शाह के अधीन जय सिंह को आगरा और फिर मालवा का तीन बार सूबेदार बनाया गया, लेकिन गुजरात के सूबेदार बनने की अजीत सिंह की इच्छा को आसानी से स्वीकार नहीं किया गया था। उसे काबुल और फिर थट्टा के सूबेदार के पद की पेशकेश की गई लेकिन उसने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया और गुजरात के सूबेदार के पद की मांग की। बाद में, उसे 1714 और 1719 में गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। जय सिंह ने जाटों, सिखों और मराठों के खिलाफ सेवाएं दी। अजीत सिंह ने भी सिखों के खिलाफ सेवाएँ प्रदान की। इसके बाद दोनों राजाओं को प्रसन्न करने के लिए, उनके अपने क्षेत्रों को उन्हें वापस दे दिया गया।

संक्षेप में राजपूत प्रमुख, भू-अभिजात वर्ग के रूप में और बड़ी संख्या में सैन्य कर्मियों के सेनापति के रूप में मुगल साम्राज्य के लिए एक महत्वपूर्ण घटक थे। क्षेत्रीय विस्तार के लिए उनकी शक्ति को समझने और उपयोग में लाने के लिए और अपने पक्ष में कुलीन वर्ग में शक्ति संतुलन को झुकाने के लिए अकबर की कुशाग्र बुद्धि सहायक बनी। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इन प्रमुखों द्वारा अपनी सेनाओं में हजारों साधारण सैनिकों को नियुक्त किया गया था। ये सैनिक अपनी बचत को अपने-अपने घर ले आए। अकबर द्वारा शुरू किए गए संबंध उसके उत्तराधिकारियों द्वारा जारी रहे। मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान, राजपूत प्रमुखों और अन्य प्रांतीय शक्तियों के पास अपने क्षेत्रों में वापस जाने और वैकल्पिक क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में अपनी स्थिति को मजबूत करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

निष्कर्ष

कृषि भूमि आधारित राजनीति को अपने कुलीन वर्ग के संबंध में हमेशा एक दुविधा का सामना करना पड़ता था। कुशल कुलीन वर्ग राज्य के हथियार थे, जिसने न केवल साम्राज्य के विस्तार में बल्कि शासन की संरचना को मजबूत करने में भी मदद की। हालांकि, कुलीन वर्ग में प्रथम संभव अवसर पर स्वतंत्रता की घोषणा करने की प्रवृत्ति थी। इसलिए इन दो परस्पर विरोधी संभावनाओं के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए प्रभावी राजाओं की ओर से कुलीन वर्ग की संरचना का प्रबंधन करने के प्रयास होते थे। कभी-कभी वैवाहिक गठजोड़ वफादारी सुनिश्चित करने के लिए बहुत ही प्रभावी माध्यम होते थे। मुगल-राजपूत संबंध ऐसी समझौता वार्ताओं की बहुत सूक्ष्म समझ प्रदान करते है। धर्म का सहारा लेना कुल मिलाकर राजनीतिक लाभ प्राप्त करने का एक प्रभावी जरिया था।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दत्त, रजनीपाम, आज का भारत, मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1985, पृ., 47-49
2. व्यास, राम प्रसाद, आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास भाग प्रथम, द्वितीय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 14
3. अहमद, डॉ. शाहिद, मध्ययुगीन राजपूताने की शासन प्रणाली, अपोलो प्रकाशन, जयपुर, 2006, पृ. 87
4. नागौरी, एस.एल., कान्ता, आधुनिक भारत का सामाजिक, सांस्कृति एवं आर्थिक इतिहास, राज पब्लिशिंग हाउस, 2007, पृ. 57
5. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताना का इतिहास (जयपुर व अलवर राज्य का इतिहास), राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 1966, पृ. 47
6. दिवाकर, बी.एम., राजस्थान का इतिहास, साहित्यागार, जयपुर, 1998, पृ. 52
7. गौड, मीना, आधुनिक भारत का इतिहास, शिव पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2000, पृ. 14
8. गौड, मीना, मध्यकालीन भारत का सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन, हिमांशु पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2009, पृ. 46
9. शर्मा, ज्ञान चन्द, एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ दी राजपूताना, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1979, पृ. 165
10. शर्मा, कालूराम अनु.-कर्नल टॉड कृत राजस्थान का इतिहास, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2008, पृ. 14
11. शर्मा, कालूराम, मध्यकालीन राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2009, पृ. 16
12. ओझा, हीराचन्द, राय बहादुर, गौरीशंकर, राजपूताने का इतिहास (प्राचीन), राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, 1997, पृ. 89-92

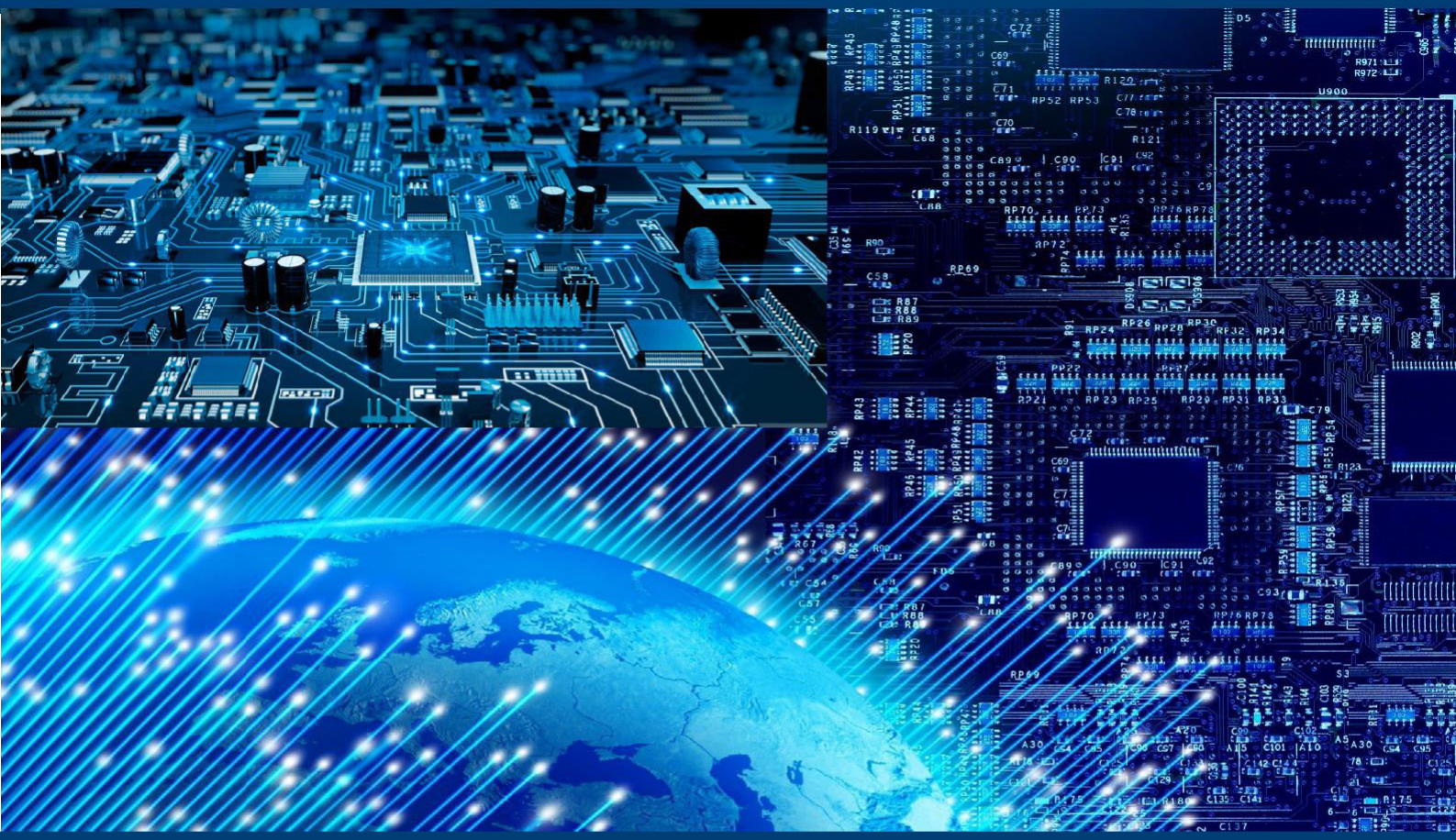

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |